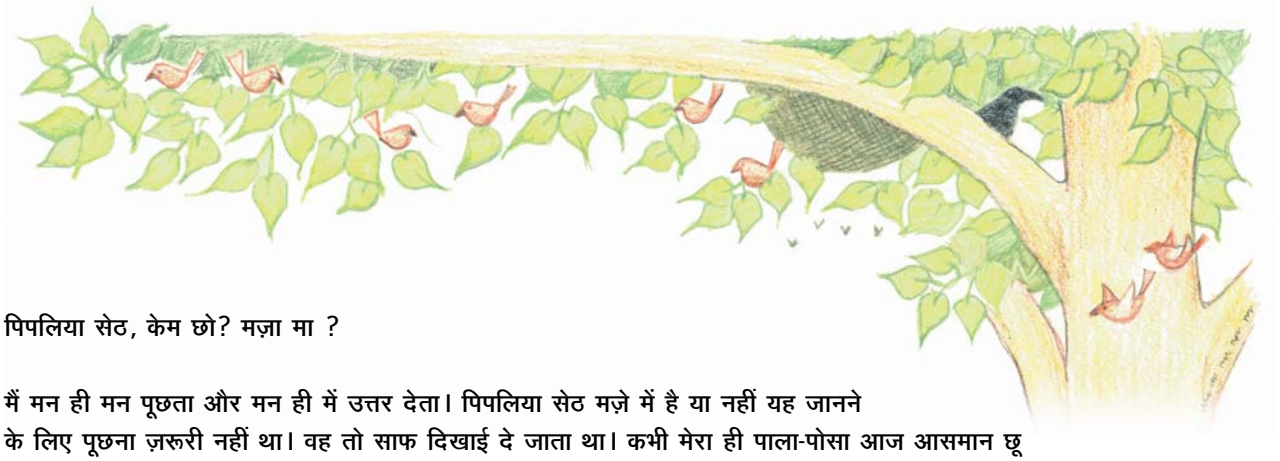

पिपलिया सेठ, केम छो? मज़ा मा ?

मैं मन ही मन पूछता और मन ही में उत्तर देता। पिपलिया सेठ मज़े में है या नहीं यह जानने के लिए पूछना ज़रूरी नहीं था। वह तो साफ दिखाई दे जाता था। कभी मेरा ही पाला-पोसा आज आसमान छू रहा था। दिन रात चाहने वालों से घिरा रहता। उसकी छाँव में टिकने वाले हज़ार रहते। कभी-कभी मैं भी आधा कल्लाक बैठ जाता और उसकी व्यस्तता को देखकर खुश होता। पचास बरस पहले न किसी में बताने की कूवत थी और न मुझमें सोचने की समझ इस मरूँ-मरूँ करने वाले का कामकाज एक दिन दोनों जहान में होगा।

जै श्रीकृष्ण पिपलिया सेठ

दिलीप चिंचालकर

हुसैन साहब को छोड़िए, डाकिए तक को पता नहीं था कि संयोगितागंज हाईस्कूल फुर्सतगंज में आता है। पता कैसे होता? यह नाम मेरे पिता का दिया हुआ जो था। मुहल्ले के उस हिस्से को जिसमें मैं और मेरा पट्ठा डोलते पाए जाते थे। परीक्षा के दिन क्या होते थे मुझे याद नहीं। लिहाजा हम सातों दिन बारहों महीने मटरगश्ती किया करते थे। साल पूछोगे तो याद नहीं, उन दिनों शम्मीकपूर की फिल्म 'तुमसा नहीं देखा' टॉकीज में चल रही थी और टोस पाँच पैसे में एक मिलता था। फुर्सतगंज के एक छोर पर वह स्कूल था जहाँ मशहूर पेन्टर हुसैन कभी इमला याद करते थे। दूसरे छोर पर रहता था मेरे यहूदी मित्र नेमी मोजेस का कुनबा।

एक किस्सा जो अब तक चल रहा है, उसकी शुरुआत पुंगी बजाने का शौक चर्राने से हुई। एक दोपहर मैं पंचिंग मशीन से अखबारी कागज़ की टिकलिया बना रहा था कि बाहर गली में पीं पीं की आवाज़ें उठने लगीं। मैंने बाहर आकर देखा तो मेरा पट्ठा मुँह में कुछ दबाकर बजा रहा है। मुझे देखते ही उसने पीपल के पत्ते को गोल-गोल लपेटकर बनाई पींपी मेरे हाथ में थमा दी। पट्ठे ने होठों से चबा-चबाकर उसकी सिवई बना डाली थी। फिर मुझे खुश करने के लिए वह कहीं से पीपल का एक पौधा उखाड़ लाया। मैंने सोचा कि अपने पास पीपल का पेड़ हो तो पत्ते ही पत्ते होंगे। तब अपन खूब पुंगियाँ बना सकेंगे। पुंगी बनाई, बजाई और फेंक दी। मुहल्ले के दूसरे बच्चों को एक टोस में एक पुंगी बेचेंगे। बागड़ के पास मिट्टी को खुरचकर हमने पौधा वहीं रोप दिया। पौधे की तो जैसे जान ही निकल गई थी। दो दिनों तक मरे जैसा पड़ा रहा। मैंने उसे सुबह-शाम

दूध और ओवल्टीन पिलाया। पट्ठे ने पानी में सत्तू घोलकर उसे डाला। मुझे लगा कि सूरज ने उसकी जड़ें देख ली है, अब वह जिन्दा नहीं बचेगा। लेकिन उसी सप्ताह बारिश शुरू हो गई और पौधा जी गया।

बारिश में पौधे की तबियत ठीक हो गई। दशहरे को मैं नए जूते पहनकर उसके साथ खड़ा हुआ तो वह मेरा कन्धा छू रहा था। पिताजी ने उसके आसपास बाड़ लगा दी जिससे बकरियाँ उसके पत्ते न चबा सकें। हम उसके पत्तों से कभी-कभी पुंगी बना लेते थे परन्तु पुंगियों का व्यापार वैसा नहीं चला जैसा हमने सोचा था। जाड़े के दिन आते-आते हम उसे भूल गए और फिर वह जैसे गायब ही हो गया। सारे पत्ते झर जाने से समझ में नहीं आ रहा था कि पौधा वहाँ है भी या नहीं। वसन्त की शुरुआत में वह फिर दिखाई देने लगा। चिकनी लाल-हरी कोपलों से लदा हुआ। कद भी शायद कुछ बढ़ गया था। गर्मी की छुट्टियों में हमने फिर उसकी पत्तियों से पुंगियाँ बनाई, परन्तु खास ज़्यादा नहीं।

इसके बाद जो बारिश का मौसम आया उसमें मेरा पीपल मुझसे दो हाथ ऊपर निकल गया। अब उसमें मस्ती भर गई थी। हवा चलती तो वह खूब लहराता। लगता मुझे चिढ़ा रहा हो। मैंने उसकी ओर ध्यान देना बन्द कर दिया। कभी-कभी खिड़की से बाहर झाँकने पर बागड़ से ऊपर पीपल डोलते हुए दिख जाता। मैं उसे नज़रअन्दाज कर देता।

साल-डेढ़ साल बाद की बात होगी। कुछ बड़े लड़के हमारे मैदान में फुटबॉल खेल रहे थे। मैदान क्या था, सड़क के बाजू में छूटी बीस-पच्चीस फुट की खाली जगह थी। दाऊ के लड़के ने गेंद को खूब जमकर लात लगाई। फुटबॉल उछली और लगा कि बगीचे में काम कर रहे पिताजी को जा लगेगी। अचानक ठक्क की आवाज़ आई। पीपल के तने ने गेंद को ताकत से रोक दिया था। मैंने पेड़ के पास जाकर देखा- अरे, यह कितना बड़ा हो गया है, और दिखनौटा भी। हरी-सलौनी पत्तियाँ और गोरा-चिट्टा तना। मेरे हाथों से भी तगड़ा था। उसका दम तो मैंने अभी हाल देखा था। वह पतंग उड़ाने की उम्र थी और पतंग उड़ाना मुझे कभी आया नहीं। सारे समय कटी पतंगों के पीछे ही भागता लेकिन शायद ही कभी कोई हाथ आई। हवा में हिचकौले खाते आई पतंगों को पीपल ऊपर ही ऊपर थाम लेता। मैं बगीचे में से हौले से उन्हें उतार लेता। पीपल ने आखिर मुझे गिदा ही लिया।

एक दिन देखता क्या हूँ कि दाऊ पीपल के नीचे एक ओटला बना रहे है। मैं वहाँ खड़ा होकर उन्हें देखने लगा। दाऊ परली तरफ रहने वाले हमारे पड़ोसी थे। कपड़ा मिल में काम करते थे। बसंतीबाई, उनकी घरवाली ने बताया कि पीपल के नीचे बैठकर दाऊ ने मन्नत माँगी थी। वह पूरी हो गई इसलिए वे ओटला बाँध रहे हैं। दो दिनों बाद एक सिन्दूर पुते भेरुजी ओटले पर बैठे मिले। हमें तो खेलने का सुभीता हो गया। वहीं बैठ हम ताश और अन्ताक्षरी खेलते। दाऊ ने अष्ट-चंग-पै के लिए एक फर्शी पर खाने भी खोद दिए। मैंने पाया कि पास के मुहल्ले के बच्चे मुझे नहीं पहचानते थे परन्तु पीपल ओटले को अच्छे से जानते थे। छावनी मण्डी के हम्माल और तांगे वाले भी हमारे घर को पीपल वाले घर के नाम से पहचान जाते थे।

एक दिन हमने मुराई मुहल्ले का घर छोड़ दिया। पहली शाम मैं बहुत देर तक पीपल के पास उदास खड़ा रहा। मैंने उसे छुआ और सहलाया। उसका सख्त बादामी तना मेरी हथेली के घेरे से कितना बड़ा था। ऊँचाई में वह घर की छत से ऊपर निकल गया था। चौड़े तने पर सैकड़ों चीटियों की आवाजाही चल रही थी। फुनगी पर गौरय्यों का चम्बा-चहचहा रहा था। पता नहीं अब कब मिलना हो... खुश रहो मेरे दोस्त।

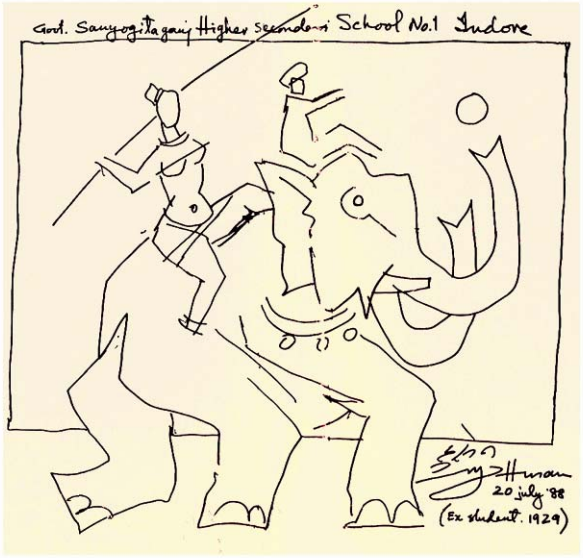

पचास वर्षों में मैंने तीन शहरों में रहकर पढ़ाई की और पाँच घर बदले। जीवन में जो भी पड़ाव आते हैं उनसे गुजरा। लेकिन फुर्सतगंज जाने से कतराता रहा। एक बार मैंने अखबार में पढ़ा कि चित्रकार हुसैन चप्पलें चटकाते हुए अपने पुराने स्कूल गए थे। वहाँ किसी ने उन्हें पहचाना नहीं तो पास ही एक ओटले पर बैठकर उन्होंने अपनी यादों को एक कागज़ पर उतारा और चपरासी को थमाकर चलते बने। तब मुझे मेरे पीपल की खूब याद आई।

नौकरी-धन्धे से पल्ला झाड़कर अब मैं अपनी मर्जी का मालिक बन गया था। एक दिन हिम्मत जुटाकर फुर्सतगंज पहुँच ही गया। वहाँ का सारा भूगोल बदल चुका था। अब वहाँ न मेरा खपरैलों वाला घर था। ना बागीचा ना नेमी का घर। सिर्फ बड़ी-बड़ी इमारतें थीं। बीच में पीपल का एक बड़ा सा पेड़ ठाठ से खड़ा था। नीचे लम्बा-चौड़ा ओटला और कृष्णजी का मन्दिर था। मेरा पीपल अब पिपलिया सेठ बन गया था। दोपहर ढल रही थी। अनगिनत पक्षी उसकी डालियों पर शोर मचा रहे थे। गिलहरियाँ दौड़ रही थीं। दो छत्तों में मधुमक्खियाँ भी पाल रखी थी सेठजी ने। सड़क पार स्कूटर खड़ाकर मैं औटले पर टिका ही था कि मन्दिर की घण्टी टन्न-**जय**! पीपल के पत्तों की सरसराहट ने पहचानी हुई आवाज़ में कहा **श्रीकृष्ण!** पुजारी ने आकर मेरे हाथ पर एक केसरिया पेड़ा रखा, कहा पिपलिया सेठ का सत्कार स्वीकार करो।